IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय कला का आधुनिक परिवेश और समाज

डॉ0 संगीता गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर
एस0एस0 खन्ना गर्ल्स डिग्री कॉलेज,
इलाहाबाद।

चित्र जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले तथा मंगलकारी है, प्रत्येक घर में प्रतिष्ठित हो। प्राचीन भारतीय ग्रंथों की सुललित, कल्याणदायी कल्पना में देशगत भावना का वर्चस्व है। प्राचीन भारत में कला की कल्पना बहुत ऊँची थी। वह युग, सांस्कृतिक समृद्धि और कलात्मक जागरूकता का युग था। लगभग सभी लक्षण ग्रन्थों में कला की स्तुति है और उसके लिए श्रेष्ठतम स्थान की कल्पना की गयी है। श्रेष्ठ कल्पना का आधार चित्र, ''प्रत्येक घर में प्रतिष्ठित हो, प्रत्येक व्यक्ति सांस्कृतिक रूचि, सम्पन्न हो और प्रत्येक व्यक्ति कला प्रेमी तथा कला पारखी हो।'' चित्रसूत्र के ये उद्‌गार सामाजिक विचार धारा के पोषक हैं। एक ऐसे समाज की कल्पना की गयी है, जहाँ व्यक्ति, व्यक्ति की रूचि–चेतना, मापदण्ड लगभग एक सा हो, जहाँ के मूल्य ओर वैचारिक उदात्ता, अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर सके। अजन्ता, बाघ आदि कला मण्डपों से चलकर उन्नीसवीं शदी पूर्ण होने तक, भारतीय कला–यात्रा इसी सामाजिक चेतना को लिए, सुन्दर पद चिन्ह छोड़ती हुई आगे बढ़ी है। सांस्कृतिक धार्मिक सभी दृष्टियों से पुष्ट सन्तुष्ट, आरोह अवरोह के सुर ताल से सजी भारतीय कला का रूप, सदैव समाज के अनुरूप रहा है। रेखा, वर्ण, तूलिका घातों की एक अलग पहचान भारतीयता की पहचान रही है किन्तु क्या आज भी यही मूल्य भारतीय कला का आधार है? सम्भवतः ऐसा नहीं है, भारतीय कला का प्रारूप बदल गया है। स्वतंत्र धरती पर सांस लेकर भी, आज भारतीय कलाकार पश्चिमोन्मुखी है। आधुनिकता के नाम पर समाज या संस्कृति की अपेक्षाएं, बहुत दूर जा पड़ी हैं। अपना घर, अपनी मूल पहचान को पीछे छोड़कर, आज का कलाकार स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीय सिद्ध कर रहा है।

संस्कृति का कार्य समाज की रक्षा करना है। आध्यात्मिक सृजन, परम्पराएं, रूढ़ियां और संस्थाएं सामाजिक संगठन के ही तरीके और साधन हैं। समाज की संरक्षा के संघर्ष में धर्म, दर्शन, विज्ञान और कला सब की अपनी जगह है। अगर केवल कला के ही बारे में विचार करें तो सबसे पहले यह जादू टोना का औजार थी, आदिम शिकारी समुदाय की आजीविका की रक्षा का साधन थी। फिर यह सामुदायिक हितों की रक्षा के लिए भली और बुरी आत्माओं को प्रभावित करने वाले हथियार की तरह पशुपूजक धर्म में बदल

गई। क्रमशः यह सर्वशक्तिमान ईश्वर और उसके सांसारिक प्रतिनिधियों के गुण कीर्तन और भजन, ईश्वर और राजा के मूर्ति निर्माण के जरिए उनके अतिरंजन में बदल गई। अंततः कमोबेश खुले प्रचार के रूप का इस्तेमाल किसी अल्पसंख्यक समूह, किसी गुट, किसी राजनीतिक पार्टी या किसी सामाजिक वर्ग के हितों के लिए होने लगा। किसी कलाकार का समूचना जीवन, आशाओं और सम्भावनाओं समेत, इस तरह के किसी सामाजिक समूह पर निर्भर होता है और अनचाहे और अनजाने वह अपने खरीदारों और संरक्षकों का प्रवक्ता बन जाता है।

आधुनिक कला की चर्चा प्रारम्भ होते ही, सबसे पहले देश व्यापी समस्यायें, पतन और उन्नयन के बीच झूलती सामाजिक प्रतिक्रियायें, उनके प्रति सचेष्ट अथवा निरपेक्ष शासकीय दृष्टिकोण और इस त्रिकोण के मध्य कार्य करती कलाकार की मनोदशा, निश्चय ही एक बारगी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। आधुनिकता और आधुनिक कला बहुत लम्बे समय से चर्चित विषय बने हुए हैं। अनेक विचार, वाद–विवाद तथा वार्तायें इस सम्बनध में होती आ रही हैं। स्पष्ट है कि, आधुनिक का तात्पर्य है, रूढ़िवादी स्वीकृति मूल्यों से हटकर आगे बढ़ना औरब ढ़कर अपनी पहचान बना सकना। कौन आगे जा चुका है, जा रहा है और जा सकेगा, सम्प्रति यह स्पर्धा बलवती है। इस स्पर्धा में मूल सिद्धान्त पीछे रह गये हैं। आज की कला का रूप, भारतीय कला चेतना को स्पर्श भी नहीं कर पा रहा है। पीछे मुड़कर देखने का समय ही नहीं है। अधिक से अधिक पा लेने के सम्मोहन में, समस्त संवेदनाओं को झुठलाकर अपनापन खोकर हम आधुनिक बन रहे हैं, अन्तर्राष्ट्रीय चेतनता को अपना रहे हैं। अपने मूल्यों को बहुरंगी चकाचौंध में अपने 'स्व' को न पहचान पाने की असमर्थता लिए। स्वतंत्रता के बाद जबकि हमारे नये मान बने, हमारे अपने नये मूल्यों की स्थापना हो, हम दूसरें की ओर देख रहे हैं। वर्षों पहले स्वतंत्र होकर भी अपनी शक्ति का अभी भी हमें अनुमान नहीं है। कला संस्थायें ओर कला अकादमियाँ भी पश्चिमी प्रभावों की समर्थक बनी हैं। राजकीय अथवा राष्ट्रीय किसी भी स्तर की प्रदर्शनी में जाइये, अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर पाश्चात्य स्वर बोलने लगते हैं। सौन्दर्य की वह अचितय उदात्त अभिव्यंजना, जिसने दूर–दूर से पर्यटकों को यहाँ लाकर खड़ा किया है, वर्तमान समय में ऐतिहासिक सत्य मात्र है जो उसे पकड़कर चलना चाहते हैं, वे आज की दौड़ में पिछड़े हुए हैं।

भारतीय कला के बढ़ते चरणों पर दृष्टि डालने से एक दर्दीली लहर मन को जकड़ लेती है कहां आज के बुद्धिजीवी कलाकार की मानसिकता जो दूर से दिखने वाले माटी के सुरंगे फलों को जीवनदायी समझ बैठा है और कहाँ अजन्ता के साधकों की स्वतः स्फुरित अन्तः चेतना, कहां अवनीन्द्र नाथ, यामिनी राय और अमृता शेरगिल की दिशा दृष्टि। हम भूल गये हैं अजन्ता के अनाम कला शिल्पियों को, बंगाल स्कूल से निश्रृत राष्ट्रीयता की ऊर्जा को यामिनी राय के लोक–बिम्बों की उल्लास मयी परिकल्पना को ओर अमृता शेरगिल के रंगों से आती स्वदेशी मिट्टी की सोंधी गन्ध को, जो हमारे संस्कारों, विश्वासों से घुली मिली है। स्वतंत्रता पूर्व इस बीते हुए कल को भविश्य से जोड़ देने की आकुलता, संवेदनशीलता मन को लुभाती है। कलाकृति केवल व्यक्तिगत जटिल अनुभूति का स्रोत नहीं होती, एक दूसरे तरह की जटिलता भी इसमें होती है, यह ऐसी गांठ होती है जहाँ नाना प्रकार के कारणों के सूत्र उलझे होते हैं। कम से कम

तीन भिन्न प्रकार की परिस्थितियों का यह परिणाम होती है, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और शैलीबादी। मनोवैज्ञानिक सत्ता के रूप में कोई व्यक्ति सामाजिक कारणों से पैदा हुई अनेक संभावनाओं में से न सिर्फ एक को चुनने की स्वतंत्रता को बहाल रखता है, बल्कि समाज द्वारा जो संभावनाएं उपस्थित नहीं की गयी है उन्हें भी अपने अपने लिए पैदा करता रहता है, इसके बावजूद की जिन सामाजिक परिस्थितियों में वह जी रहा है वे उसे रोकती है। सृजनात्मक व्यक्ति अभिव्यक्ति के नए रूप आविष्कृत करता है, उसे वे तैयारशुदा प्राप्त नहीं होते। जो वह अनायास प्राप्त करता है वह सकारात्मक नहीं, नकारातमक चरित्र की वस्तु है, वह सब कुछ जो उस विशेष जो उस विशेष ऐतिहासिक क्षण में सोचा, समझा, अनुभूत या अभिव्यक्त न किया जा सके।

भारतीय कला परिवेश अन्य देशों की कला से भिन्न रहा है। जीवन के प्रति हमारा दृष्टकोण समन्वयवादी है। विभिन्न मत मतान्तर, अनेक धर्म, विश्वास, दर्शन आदि की बहुमुखी अस्तित्व स्थापनाओं के इस देश में, चिन्तन की विधा भी सर्वथा भिन्न है। समाज के भिन्न–भिन्न तत्वों को समन्वित करना, संवेदनशील कला साधक का दायित्व हो जाता है। किन्तु उस दायित्व से परे, महात्वाकांक्षा की सतरंगी कल्पना युगों से चले आ रहे दीक्षित मूल्यों को विनष्ट किये दे रही है, जो वास्तव में हमारी रीढ़ है, हमारे चिन्तन, का केन्द्र और हमारे आदर्शों का लक्ष्य है। ऐसे मेंएक वैचारिक बिखराव आता जा रहा है।

यूरोपीय देशों में मशीनी युग की गतिशीलता ओर बीस वर्षों के अन्तराल से होने वाले दो विश्व युद्धों ने चिन्तन व्यवस्था को डगमगा दिया, विलक्षण अमूर्तता जिसका परिणाम था। भारतीय कलाकार की आत्मा भी युगों से चली आ रही निराशा, कुण्ठा और घुटन के फलस्वरूप संस्कारिक वैचारिकता में सम्भवतः विश्वास नहीं कर पाई। साथ ही कलाकार मन के लिए एक प्रश्न खड़ा हो गया। वह किधर जाए? क्या करे? इस दिशाभ्रम और दुविधाजनक तनाव के मध्य उसे एक निर्णय लेना था। मानवीय प्रलोभनों ने विजय पाई और संस्कारों के सकरे घेरे से ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय का सम्मोहन लिये, अपने अस्तित्व को विश्वव्यापी बनाने की आकाँक्षा में वह पश्चिमी प्रभावों को अपना बैठा। भारतीय आधुनिक–कला के अभिशप्त परिवेश की कहानी यहीं प्रारम्भ होती है।

सांस्कृतिक सृजन, खासकर कला के प्रचारात्मक मूल्य की खोज, मानव इतिहास के आदिकाल में ही कर ली गयी और उसका भरपूर उपयोग भी किया गया, लेकिन स्पष्ट सिद्धान्त के अर्थ में कला के विचार धारात्मक चरित्र को स्वीकार करने, कला जाने या अनजाने जिन व्यावहारिक लक्ष्यों को पूरा करती है वहीं उसका गुप्त या खुला प्रचार है, इस विचार को व्यक्त करने में मनुष्य को हजारों साल लग गये। फ्रांसीसी और ग्रीक प्रबोधन के दार्शनिकों ने सांस्कृतिक मानदंडों की सापेक्षिकता की खोज की और मानव मूल्यांकनों की वस्तुनिश्ठता और आदर्श स्थिति में सदियों तक बार–बार संदेह व्यक्त किये गये। उन्नीसवीं सदी के उदारवाद ने राजनीतिक प्रगति ओर विशुद्ध कला, लोकतांत्रिक और कलात्मक भावनाओं, सामान्य मानवीय हितों और कला के सार्वभौमिक तोर पर वैध नियमों के बीच जो महान संश्रय सोचा था, वह एक कल्पना मात्र थी, वस्तुतः उसका कोई आधार न था। यहाँ तक कि कला के सत्य और राजनीतिक सत्य के बीच कथित सम्बन्ध, प्रकृतिवाद और समाजवाद के बीच एकरूपता का जो सिद्धान्त समाजवादी कला

सिद्धान्त की शुरू से बुनियादी थीसिस रहा है और अब भी उसके मत का अंग है, वह भी काफी कुछ संदिग्ध है। यह जानकर परम संतोष होगा की सामाजिक अन्याय और राजनीतिक उत्पीड़न का काल आध्यात्मिक बंजरपन के जरिए दण्डनीय साम्राज्य, जब सहानुभूति शून्य सामाजिक ढांचे का प्रभुत्व रहा ओर कला में निकृष्ट रूचि और मौलिकता की कमी उस काल की विशेषता रही, लेकिन उस हीन कला के साथ ही साथ अत्यन्त मूल्यवान कला सृजन भी जारी रहा।

आज के अधिकांश साधन और सुविधा प्राप्त, ऊँचे कलाकार, जिन्हें देश से बाहर जाने के अवसर मिले हैं, वहाँ से बहुत कुछ ऐसा ले आये हैं जो नितान्त विकृत वैयक्तिक्ता को जन्म दे रहा है। हम आज असमर्थ नहीं हैं, फिर भी जो कुछ कह रहे, वह हमारी अपनी बात नहीं है, न उससे हमारा परिचय है। अंकुरित पीढ़ी को इससे जो सन्देश मिल रहा है, उसके आधार पर उनके लिए दिशा निर्धारित करना, एक समस्या है। चित्रण, अध्ययन, अध्यापन करते हुए, सदैव ही एक स्थान पर रूकना पड़ता है। कला का रूप क्या हो? वह भाव चेतना, लेकर भारतीय कलाकार आज चल रहा है, क्या वह राश्ट्रीय या सामाजिक स्तर पर ऐसी सृजनात्मक उपलब्धि करा रहा है, जिसकी आज हमें आवश्यकता है? क्या यह सम्भव है, कि पाश्चात्य प्रभावों में आकण्ठ डूबी, आत्मकेन्द्रित अभिव्यंजना राष्ट्र या देश का कल्याण कर सकेगी? समन्वयवादी नीति हमारी संस्कृति का आधार है। सामाजिक प्रतिक्रिया, कला के सौन्दर्यात्मक पक्ष के लिए अपेक्षित है। कलाकार, मात्र अपने लिए अथवा वर्ग विशेष के लिए सृजन कर, अभिव्यक्ति को कालजयी नहीं बना सकता। उसकी कृति के शाश्वत सत्य की प्रतिध्वनि प्रत्येक व्यक्ति तक जब अनायास ही पहुंच जायेगी, तभी कलाकार का सामाजिक दायित्व पूर्णत्व को प्राप्त होगा।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूची</u>

1. कला की आधुनिक प्रवृत्तियाँ – कला प्रसंग प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 18
2. कला चिंतन, कला त्रैमासिकी, पृ0सं0 176
3. कला का इतिहास दर्शन – आर्नल्ड हाउजर, पृ0सं0 20
4. कला निबन्ध – अशोक, प्रकाशक पंजय पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. कला सिद्धान्त और परम्परा भारतीय चित्रकला की सैद्धान्तिक विवेचना, प्रो0 सुधा सरन, डॉ0 आनन्द लखटकिया, प्रकाशक, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
6. कला दर्शन – डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा, प्रकाशक साहित्य संगम, प्रयागराज।
7. कला – समय – समाज – प्रयाग शुक्ल, राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1979
8. कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियाँ, रामचन्द्र शुक्ल, सूचना विभाग, लखनऊ।
9. समकालीन कला, ललित कला अकादमी, अंक 31, पृ0सं0 30
10. समसामयिक भारतीय कला–विनोद भारद्वाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।